INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS

Volume 4, Issue 7, July 2016 ISSN: 2320-2882 (Online)

ORIGINAL ARTICLE

Impact Factor: 0.345(GIF)

www.ijcrt.net

आधुनिक समय में कर्मयोग की उपादेयता

डॉ० जी०डी० शर्मा

विभागाध्यक्ष, योग विज्ञान विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

हिमांशु

शोध छात्र, योग विज्ञान विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

शोध–सार

आधुनिक काल को भारतीय विद्वत जन 'कलयुग' की संज्ञा देते हैं। 'कल' का शाब्दिक अर्थ मशीन, उपकरण, तकनीक इत्यादि है। यह मशीनों का युग है आधुनिकता का युग है। इस युग में पदार्थ एवं भोगवादी चिंतन चरम पर है। आधुनिकता ने मनुष्य को सुख सुविधाओं से तो परिपूर्ण कर दिया है परन्तु मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर से मनुष्य स्वयं को रिक्त पाता है।

ऐसा मनुष्य स्वयं एवं समाज के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। अंग्रेजी भाषा की उक्ति है– "An empty mind is devil's workshop"। यही कारण है कि भौतिक सम्पन्नता ने व्यक्ति से श्रम को दूर कर दिया है। इसी क्रम में कर्म की महत्ता का भी ह्रास हुआ है।

उचित व अनुचित का ध्यान न रखकर किए गये फलासक्ति से युक्त मानवीय कर्मों ने समस्त विश्व में अशान्ति, अराजकता व अपराधिक मानसिकता का पोषण किया है। कर्म भीरू आधुनिक मनुष्य जाति के लिए अपरिहार्य हो जाता है की कर्मयोग का आवलंबनकर घोर आधुनीकीकरण से स्वयं और समस्त विश्व का रक्षण कर सके। शास्त्र सम्मतकर्म ही मनुष्य मात्र व आधुनिक समय के लिए सर्वथा उपयुक्त है। शास्त्रोक्त कर्मों का सम्पादन ही कर्मयोग है।

मुख्य शब्द : आधुनिक काल, कर्मयोग, मनुष्य जीवन।

परिचय

वर्तमान समय के मनुष्य के अन्तर्मन में अकर्मण्यता बीज रूप में रोपित हो चुकी है, परिणामतः समाज में नित्य नवीन कुरीतियाँ व्याप्त हो रही हैं तथा संसार के अधिकांश मनुष्यों की जीवन शैली में अशान्ति, अव्यवस्था एवं असंतोष व्याप्त हो गया है। व्यक्तिगत स्वार्थ एवं प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप वह नियत कार्य को भली–भाँति करने में असमर्थ हो गया है जिससे कार्योपरान्त प्राप्त होने वाले संतोष रूपी आनन्द की प्राप्ति में असमर्थ है।

इस प्रकार कर्म पथ से भ्रष्ट हुए मनुष्य का जीवन अधोगामी एवं विनाश की ओर अग्रसित हो रहा है। वर्तमान समय में मनुष्य की स्वयं के उत्तरदायित्वों से पलायन की

प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है जिसके फलस्वरूप उसे संसार दुःख एवं कष्टप्रद प्रतीत होता है। आधुनिक काल संक्रमण का काल है, जिसमें हमारी संस्कृति एवं मौलिकता का ह्रास हुआ है। इसका मूल कारण हमारे जीवन से कर्म की महत्ता का विलीन होना है। कर्मयोग असीमित एवं गहनता लिए हुए जीवन मूल्यों का समूह है, जिसके आंशिक अनुपालन से भी मनुष्य के वर्तमान एवं भावी जीवन का कायाकल्प हो जाता है।

भारतीय धर्मग्रंथों में मनुष्य योनि की प्राप्ति को भाग्य का विषय माना है तथा इसे ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति की संज्ञा दी गई है। तुलसीदास कृत रामचरित मानस में इस योनि की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि–

बड़े भाग मानुष तन पावा,
सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन गावा।
साधना धाम मोक्ष करि द्वारा
पारोना जेहि परलोक संवारा।।[1]

उपर्युक्त चौपाइयों में मानव देह का महिमा मण्डन करते हुए इसे मोक्ष का साधन बताया गया है।

जिस मानव देह की प्राप्ति हेतु देवगण भी सदैव लालायित रहते हैं, उस देह को प्राप्त करने वाला मानव, उस देह एवं जीवन को नष्ट–भ्रष्ट कर रहा है। तथापि कर्मयोग ने आशा की किरण के रूप में मानव जीवन को स्पर्श किया है। ऐसी स्थिति में मनुष्य के लिए अत्यन्त अनिवार्य हो जाता है कि वह सद्ग्रंथों एवं सद्गुरुओं का आश्रय ग्रहण कर जन्म–मरण के इस बंधन से मुक्ति प्राप्ति हेतु कर्म के चक्र को समझे कि – कर्म क्या है? उसकी अवधारणा, फल एवं भेद इतयादि क्या हैं? इन प्रश्नों के उत्तर हमें प्राचीन ऋषि प्रणीत साहित्य में प्राप्त होते हैं। इन सद्ग्रंथों द्वारा मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करना सहज हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि–

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतु भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मार्ण।।[2]

अर्थात् तुझे केवल कर्म करने का अधिकार है, केवल कर्म करना तेरे हाथ में है, कर्मों के फल पर तेरा अधिकार नहीं है। अतः तू कर्म फल की इच्छा न रखकर कर्म कर।

इन वाक्यों को पढ़कर तथा श्रवण कर अनेकों महापुरुषों ने कर्मयोग को अपनी साधना मार्ग के रूप में चुना है। **गाँधी, तिलक** एवं **विवेकानंद** इत्यादि महापुरुषों ने इस वाक्य को जीवन में धारण कर श्रेष्ठ मानव जीवन को चरितार्थ किया है। योग की विभिन्न साधनाओं ज्ञान, भक्ति, ध्यान इत्यादि में भी कर्म के महत्व को सहज ही स्वीकार किया गया है। मनुष्य की वर्तमान स्थिति में कर्मयोग सर्वथा उपयोगी एवं श्रेष्ठ है। श्रीमद्भगवद्गीता एवं अथर्ववेद में जिस धर्म का वर्णन है वह कर्म ही है। मानव जाति का कल्याण एवं सद्गति उसके कर्मों में निहित है, उसकी निष्काम भावना से किये गए कर्म (कर्म योग) ही उसकी विजय का पथ प्रशस्त करेगी। इस संदर्भ में यर्जुवेद में कहा गया है कि–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा
मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।[3]

अर्थात् संसार की समस्त स्थावर–जंगम वस्तुयें ईश्वर से परिपूर्ण है, इन वस्तुओं में त्यागपूर्ण भाव (वैराग्य भाव) रखते हुए मनुष्य को अपना पोषण करना चाहिए तथा किसी अन्य व्यक्ति के धन की कामना नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार कर्म करते हुए जीवन जीने की कला ही कर्म योग है। कर्म संस्कारों को समाप्त कर मुक्ति प्राप्ति हेतु मनुष्य को कर्म योग का अवलम्बन कर जीवन व्यतीत करना चाहिए। यह साधना मार्ग मनुष्य हेतु सर्वथा उपर्युक्त है, इसके माध्यम से वह साधना पथ पर अग्रसारित होता हुआ मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

कर्मयोग की उपादेयता

आधुनिक जीवन में कर्मयोग की उपादेयता को समझने हेतु हमें सर्वप्रथम कर्म एवं उसके पश्चात् कर्मयोग की अवधारणा को समझना होगा। व्याकरण में क्रिया से निष्पाद्यमान फल के आश्रय को कर्म कहते हैं।

कर्म शब्द संस्कृत भाषा की 'कृष' धातु में 'अन्' प्रत्यय जोड़ने पर निष्पन्न होता है, जिसका सामान्य अर्थ कार्य अथवा क्रिया है।

कर्म को योग शब्द के साथ जोड़ने पर कर्मयोग साधना मार्ग का निर्माण होता है। कर्मयोग की परिभाषायें एवं कर्म के विविध स्वरूपों की चर्चा श्रीमद्भगवद्गीता, श्रुतियों के अतिरिक्त उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों में विषद रूप से की गई है।

यजुर्वेद में कर्म की उपादेयता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है–

कुर्वन्नेह कर्माणि जिजिविषेच्छतंः समाः।
एवं त्वपि नान्थथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[4]

अर्थात् इस लोक में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करें। इस प्रकार मनुष्य का अभिमान रखने वाले तेरे लिए इसके सिवा कोई और मूर्ख नहीं है, जिससे तुझे अशुभ कर्म का लेप न हो। ऋग्वेद का एक अन्य मंत्र भी कर्म का प्रतिपादन करता है–

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपध्नन्तो अरात्णः।।[5]

अर्थात् क्रियाशील बनो, प्रभु महिमा का प्रचार करो, ऐश्वर्य को बढ़ाओ तथा विश्व को आर्य बनाओ, ऐसा निर्देश हमें मिला है।

अब प्रश्न यह है कि कर्म की साधना का स्वरूप कैसा हो, इसके उत्तर में यजुर्वेद में कहा गया है–

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।[6]

अर्थात् त्याग पूर्वक स्वयं का पालन करना तथा किसी के धन की इच्छा न रखते हुए जीवन व्यतीत करने का निर्देश दिया गया है।

भारतीय संस्कृति के सुप्रसिद्ध ग्रंथ श्रीमदभगवद्गीता में कर्म योग पर विस्तार से चर्चा की गई हे। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को श्रीमद्भगवदगीता में इन्द्रियों को वश में रखकर किया जाने वाला कर्म श्रेष्ठ बतलाया गया है।[7]

उपरोक्त कथन से प्राप्त होता है कि कर्म को सुचारू रूप से किस प्रकार किया जाए। परन्तु मन में शंका उत्पन्न होती है कि कर्म फल की इच्छा से रहित होकर मनुष्य कर्म क्यों करे? इस प्रश्न का उत्तर भगवत्गीता के दूसरे अध्याय से प्राप्त होता है। श्री कृष्ण कहत हैं कि स्वयं के लिए किये जाने वाले कर्मों को कृपणता की संज्ञा देते हुए इन्हें गर्हित श्रेणी के अन्तर्गत स्थान दिया है।[8] कर्म योग की महत्ता बतलाते हुए गीता के तृतीय अध्याय में कहा गया है–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते स्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।[9]

अर्थात् कोई भी मनुष्य क्षणमात्रा भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। मनुष्य अपनी प्रकृति एवं स्वभाव से पैदा होने वाले गुणों द्वारा विवश हो कर्म में प्रवृत्त होता है। इस उद्धरण से कर्म योग की महत्ता प्रतिपादित होती है।

श्रीकृष्ण कर्म की महत्ता पर विशेष बल देते हुए कहते हैं की शरीर निर्वाह के लिए भी कर्म आवश्यक है और अर्जुन को आदेश देते हैं कि शास्त्रोक्त कर्म कर क्योंकि कर्म न करते से भी कर्म करना श्रेष्ठ है।[10]

श्रीमद्भगवद्गीता में ही एक अन्य स्थान पर श्रीकृष्ण कर्म के विषय में कहते हैं कि–

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंड्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्तकर्तुमर्हसि।।[11]

अर्थात् लोक संग्रह की दृष्टि से भी जनकादि बुद्ध पुरुष कर्म करते हैं, इसलिए पूर्णता की प्राप्ति एवं सामाजिक व्यवस्था को दृष्टि में रखकर कर्म में प्रवृत होना चाहिए। शास्त्रों के अनुसार कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य को जानकर कर्म करते हुए मनुष्य को अपना उत्थान करना चाहिए।[12]

उपर्युक्त हेतु के लिए गीता शास्त्र में श्रीकृष्ण ने तीन प्रकार के कर्मों का उल्लेख किया है–

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।[13]

अर्थात् कर्म की गूढ़ता को समझना दुष्कर है, इसलिए मनुष्य को भली–भाँति कर्म–अकर्म–विकर्म को जानना चाहिए तथा तदनुरूप कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए।

कर्म– वेद विहित कर्म ही गीता का कर्म है।

अकर्म– अनासक्त कर्म को निष्काम अथवा अकर्म कहा है।

विकर्म– 'विगतः कर्मः यस्य स विकर्मः' अर्थात् जिससे विहित कर्म अलग हो जाये, ऐसा निषिद्ध श्रेणी का कर्म विकर्म है।

श्रीकृष्ण इन सभी प्रकार के कर्मों के त्याग का सुझाव देते हुए, बुद्धियुक्त पुरुष के समान अच्छे–बुरे कर्मों के त्याग की प्रेरणा देते हैं तथा कुशलतापूर्वक कर्मों में प्रवृत्ति की प्रेरणा देत हैं।[14] वे विद्वान जनों के लिए यज्ञ, दान व जप को शुद्धि प्रदान करने वाला कर्म कहते हैं।[15]

श्रीमद्भगवद्गीता के अतिरिक्त महर्षि पतंजलि प्रणीत योगदर्शन योग का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। ग्रंथ में कर्म, कर्माशय, कर्म संस्कार एवं क्रिया योग के रूप में कर्म योग के तत्वों का उल्लेख हुआ है। पातंजल योगसूत्र में चौथे पाद में कर्म के भेदों का उल्लेख प्राप्त होता है–

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्।।[16]

अर्थात् योगी का कर्म पाप–'पुण्य से रहित होता है तथा अयोगी व्यक्ति पुण्यात्मक, अपुण्यात्मक व पाप–पुण्य मिश्रित कर्म करता है। अयोगी द्वारा किए गए कर्मों का चित्त पर गहन प्रभाव पड़ता है जो उसके भविष्य के जन्मों का कारण बनता है।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि हेतु पातंजल योगसूत्र में आगे कहा गया है कि–

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्मवेदनीयः।[17]

अर्थात् अविद्यादि क्लेशों का मूल कर्मों के संस्कार हैं, जिसका फल दृश्यमान एवं अदृश्यमान जन्मों में भोगों में जाता है।

अविद्यादि क्लेशों के मूल कारणों के बने रहने पर ही कर्म संस्कारों का विपाक, जाति, आयु व भोग्य पदार्थों की प्राप्ति होती है। विपाक रूप में प्राप्त पदार्थ सुख तथा दुःख के रूप में फल देने वाले होते हैं। इसका प्रमुख कारण जीव द्वारा किये गए पुण्य एवं पाप कर्म ही होते हैं।[18] इन कर्मों के बंधन क्षीण करने की कला का नाम ही कर्म योग है।

इन क्लेशों की समाप्ति हेतु महर्षि पतंजलि ने क्रिया योग का मार्ग प्रशस्त किया है, जिससे कर्मों के आशय (संस्कारों) को कम अथवा समाप्त किया जा सकता है।[19] महर्षि पतंजलि दूसरे सूत्र में क्रिया योग का प्रयोजन बतलाते हैं–

समाधि भावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च।।[20]

अर्थात् क्रिया–योग का अभ्यास समाधि की अवस्थाकी प्राप्ति तथा क्लेशों को सूक्ष्म करने हेतु किया जाता है। मनुष्य के क्लेश क्षीण होने से दुःखों की आत्यन्तिक रूप से निवृत्ति हो जाती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त कथनों, शास्त्रोक्त वचनों एवं सामयिक परिस्थितियों से इस बात की सम्पुष्टि होती है की कर्मयोग के मार्ग का अनुशीलन करना वर्तमान समय की पुकार है। आधुनिक युग की विसंगतियों और अप्राकृतिक व्यवस्थाओं का भंजन कर मनुष्य मात्र के पुर्न उत्थान का मार्ग कर्मयोग साधना द्वारा ही सम्भव है। कर्मयोग की सार्वभौमिकता और प्रासंगिकता निःसंदेह ही मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में विद्यमान है। श्रीमद्भगवद्गीता में विभिन्न साधना मार्गों का प्रतिपादन किया गया है। इनमें से कर्मयोग साधना मार्ग अत्यन्त उपयोगी है। मानव कल्याण एवं मानव द्वारा परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कर्म योग साधना का अवलम्बन सभी के लिए उपयुक्त है। आधुनिक जीवन में कर्म योग साधना की उपयोगिता निःसन्देह ही महत्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची

1. रामचरित मानस/उत्तरकाण्ड 3–42
2. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/47
3. यर्जुवेद – 40/1
4. यजुर्वेद – 40/2
5. ऋग्वेद – 6/63/5
6. यजुर्वेद – 40/1
7. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/7
8. दूरेण हयवरं कर्म।। श्रीमद्भगवद्गीता – 2/49
9. श्रीमद्भगवद्गीता – 3/5
10. श्रीमद्भगवद्गीता – 3/8
11. श्रीमद्भगवद्गीता – 3/20
12. तस्माच्छास्त्र प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितो।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।। गीता – 16/24
13. श्रीमद्भगवद्गीता – 4/17
14. बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। गीता – 2/50
15. यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत।। गीता – 18/5

16. योग सूत्र – 4/7

17. योगसूत्र – 2/12

18. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा।
तेत्लासदपरिताफलाः पुण्यापुण्य हेतुत्वात्।। यो०सू० – 2/13–14

19. योगसूत्र – 2/1

20. योगसूत्र – 2/2